JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पंडित दीन दयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शनः एक विशेष अध्ययन

शैलपुत्री शर्मा

शोध छात्रा (जे॰आर॰एफ॰), ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

डॉ पूनम चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर (विभागाध्यक्ष), ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती भाषा विश्वविद्यालय लखनऊ, उत्तर प्रदेश

सारांशः– यह शोध पत्र एक दूरदर्शी विचारक और भारत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के प्रमुख विचारकों में से एक, पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा व्यक्त एकात्म मानववाद के गहन दार्शनिक आधारों की अध्ययन करता है। एकात्म मानववाद, एक सामाजिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक दर्शन, मानव अस्तित्व के आध्यात्मिक, भौतिक और सामाजिक आयामों को एकीकृत करके व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण में सामंजस्य स्थापित करता है। यह अध्ययन एकात्म मानववाद के मूल सिद्धांतों पर प्रकाश डालता है, ''मानव–धर्म'' या मानवीय मूल्यों की अवधारणा, ''अंत्योदय'' के विचार और समाज के अंतिम व्यक्ति के उत्थान और विकेंद्रीकृत और आत्मनिर्भर सामाजिक–आर्थिक संरचना की दृष्टि पर इसके प्रभावों की जांच करता है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय के लेखन और भाषणों के व्यापक विश्लेषण के माध्यम से, इस शोध पत्र का उद्देश्य एकात्म मानववाद की बारीकियों को समझना, समकालीन समय में इसकी प्रासंगिकता और मानव उत्कर्ष और सामाजिक विकास पर व्यापक चर्चा में इसके संभावित योगदान पर प्रकाश डालना है।

सूचक शब्दः सामाजिक–आर्थिक, अंत्योदय, एकात्म मानववाद, विकास, स्वदेशी।

परिचयः एक प्रतिष्ठित दार्शनिक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ, के रूप मे पंडित दीनदयाल उपाध्याय, स्वतंत्रता के बाद के भारत के बौद्धिक परिदृश्य में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में उभरे हैं। उनके वैचारिक योगदान, विशेष रूप से एकात्म मानववाद के दर्शन से राष्ट्र के सामाजिक–राजनीतिक ताने–बाने पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यह शोध पत्र पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद की जटिल परतों को उजागर करने, इसके दार्शनिक सिद्धांतों, ऐतिहासिक संदर्भ और समकालीन प्रासंगिकता की जांच करने का प्रयास करता है। सितंबर, 1916 को जन्मे, उपाध्याय ने छोटी उम्र से ही तीव्र बुद्धि का प्रदर्शन किया और अपने विचारों को भारतीय समाज के सामने आने वाले मूलभूत मुद्दों की ओर निर्देशित किया। एकात्म मानववाद के मूल सिद्धांत, यह शब्द उन्होंने 1964 में जनसंघ के ग्वालियर सत्र के दौरान गढ़ा था और बाद में 1965 में विजयवाड़ा सत्र में आधिकारिक तौर पर स्वीकार किया गया, जो व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को समाहित करता है। अपने सार में, एकात्म मानववाद मात्र आर्थिक और राजनीतिक विचारों से परे, मानव अस्तित्व के आध्यात्मिक, भौतिक और सामाजिक आयामों में सामंजस्य और एकीकरण करना चाहता है। एकात्म मानववाद, जैसा कि उपाध्याय ने व्यक्त किया, ''मानव–धर्म'' की अवधारणा प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक–राजनीतिक ढांचे में मानवीय मूल्यों की केंद्रीयता पर जोर देता है। यह व्यक्तिवाद और सामूहिकता के चरम से दूर रहते हुए, व्यक्तिगत आकांक्षाओं और सामूहिक कल्याण के बीच संतुलन का आह्वान करता है। यह दर्शन ''अंत्योदय'' के सिद्धांत पर आधारित है, जो समाज के अंतिम व्यक्ति के उत्थान की वकालत करता है, यह सुनिश्चित करता है कि विकास का लाभ हाशिए पर और वंचितों तक पहुंचे। भारतीय दार्शनिक परंपरा में इसकी जड़ों को स्वीकार किए बिना कोई भी उपाध्याय के एकात्म मानववाद में गहराई से नहीं उतर सकता। उनकी बौद्धिक खोज धर्म (कर्तव्यध्धार्मिकता) और संस्कृति और सभ्यता के बीच संबंधों जैसी अवधारणाओं की खोज गहराई से जुड़ी हुई थी। इन गहन विचारों के साथ उपाध्याय का प्रारंभिक जुड़ाव भारतीय समाज के सांस्कृतिक लोकाचार में उनके दर्शन को स्थापित करने की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। बहुमुखी विचारक ने अपने विचारों को न केवल भाषणों के माध्यम से, बल्कि लिखित कार्यों के माध्यम से भी व्यक्त किया। उपाध्याय के साहित्यिक योगदान में ''द टू प्लान्स,'' ''पॉलिटिकल डायरी,'' ''डिवैल्यूएशन,'' और ''रास्तेर चिंतन'' जैसे प्रभावशाली कार्य शामिल हैं, जो आर्थिक नीतियों से लेकर राष्ट्र की सांस्कृ

तिक पहचान तक कई विषयों को संबोधित करते हैं। ये लेख उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता और एक व्यापक वैश्विक दृष्टिकोण को व्यक्त करने की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हैं।

एकात्म मानववाद, जैसा कि उपाध्याय ने परिकल्पना की थी, स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने आने वाली दुविधा की प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है। ग्वालियर अधिवेशन के दौरान अपने संबोधन में उन्होंने भारत को अपने भविष्य के विकास के लिए एक दिशा चुनने की तत्काल आवश्यकता पर जोर दिया। उपाध्याय ने आंख मूंदकर पिछली परंपराओं की ओर लौटने और निर्विवाद रूप से पश्चिमी दर्शन को अपनाने के बीच द्वंद्व की आलोचना की, इसके बजाय एक सूक्ष्म संश्लेषण की वकालत की जो दोनों की ताकत से प्रेरित हो। उन्होंने तर्क दिया कि भारतीय लोगों के जीवन में व्यापक विकास के सपने को साकार करने के लिए ऐसा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। इस शोध पत्र का उद्देश्य तेजी से बदलती दुनिया की चुनौतियों से निपटने में इसके संभावित योगदान पर विचार करते हुए, समकालीन सामाजिक–राजनीतिक परिवेश में इस दर्शन की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है। साथ ही साथ यह शोध पंडित दीनदयाल उपाध्याय की स्थायी विरासत और उनके द्वारा भारतीय वैचारिक परिदृश्य को दी गई बौद्धिक समृद्धि पर प्रकाश भी डालता है।

एकात्म मानववाद का दर्शनः

पंडित दीन दयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद दर्शन इस विमर्श से शुरू होता है कि ब्रिटिश शासन से आजादी के बाद क्या जवाहरलाल नेहरू की सरकार या भारत सरकार ने सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए सही मॉडल अपनाया है? क्या भारत को आधुनिक विकास मॉडल (जो पश्चिमी या विदेशी विचारधाराओं पर आधारित है) या प्राचीन (उस स्थिति से आगे बढ़ना चाहिए जब भारत ने विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी स्वतंत्रता खो दी थी) अपनाना चाहिए या भारत को विकास के लिए अपना स्वदेशी सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक मॉडल विकसित करना चाहिए। दीनदयाल उपाध्याय ने विकास के लिए भारत के स्वदेशी मॉडल यानी एकात्म मानववाद को तैयार करना पसंद किया। उन्होंने विकास के पश्चिमी या विदेशी और प्राचीन दोनों मॉडलों को उचित आधार पर खारिज कर दिया। प्राचीन मॉडल के बारे में उनका तर्क था कि यह भूल जाओ कि यह वांछनीय हैं या नही हैं, इसे अपनाना निश्चित रूप से असंभव है। समय के प्रवाह को उलटा नहीं किया जा सकता, उन्होंने कहा कि भारतीयों को नई परिस्थितियों का सामना करने के लिए आवश्यकतानुसार अपने जीवन को नया आकार देने का प्रयास करना चाहिए। इसलिए उन्होंने विकास या दर्शन का एक नया मॉडल दिया जो प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित है।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय पश्चिमी या विदेशी विचारधाराओं को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने कहा कि विदेशी विचारधाराएं "आवश्यक रूप से सार्वभौमिक नहीं हैं। "वे उन विशेष लोगों और उनकी संस्कृति की सीमाओं से मुक्त नहीं हो सकते जिन्होंने इन वादों एंव विचारो को जन्म दिया। इसके अलावा, इनमें से कई विचार पहले से ही पुराने हो चुके हैं।" उनके लिए पश्चिमी राजनीतिक दर्शन ने लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, समाजवाद या समानता और सार्वभौमिक एकता को अपने आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। व्यवहार में ये सभी आदर्श अपूर्ण एवं परस्पर विरोधी सिद्ध हुए हैं। जैसे कि राष्ट्रवाद ने राष्ट्रों के बीच संघर्ष को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक संघर्ष हुआ। हालाँकि, वैश्विक एकता और राष्ट्रवाद एक दूसरे से टकराते हैं। विश्व एकता सार्वभौमिक भाईचारे के लिए राष्ट्रवाद के दमन की वकालत करती है। जबकि, राष्ट्रवाद के समर्थक विश्व एकता को एक काल्पनिक आदर्श मानते हैं और राष्ट्रीय हित पर सबसे अधिक जोर देते हैं। इसी प्रकार समाजवाद और लोकतंत्र में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। लोकतंत्र व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान करता है लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था इसका उपयोग शोषण और एकाधिकार के लिए करती है। पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिए समाजवाद लाया गया था

वह मार्क्सवाद को हमारे देश की समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक और व्यावहारिक के बजाय प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण के रूप में भी व्यक्त करते हैं। इस प्रकार, मनुष्य भ्रमित है और यह तय करने में असमर्थ है कि भविष्य की प्रगति के लिए सही मार्ग क्या है। पश्चिमी विचारक यह विश्वास के साथ कहने की स्थिति में नहीं है कि केवल पश्चिमी दर्शन ही सही मार्ग है, कोई अन्य नहीं। यह हमे स्वंय ही टटोलना है, इसलिए केवल पश्चिमी दुनिया का अनुसरण करना एक अंधे व्यक्ति द्वारा दूसरे के नेतृत्व में किए जाने का उदाहरण है। दीन दयाल जी ने आगे कहा कि प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक विशेषता होती है। अतः उनके नेताओं को देश की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर देश मे घटित बुराइयों के निवारण के उपाय तलाशने चाहिए। यह सोचना अतार्किक है कि एक देश के नेता अपनी समस्याओं के लिए जो उपाय करने का निर्णय लेते हैं, वे अन्य सभी देशों पर समान्य तरह से प्रभावी होने की संभावना रखते हैं। अतः विदेशी विचारों को भारत में भी मूल रूप सें अपनाना न तो संभव है और न ही बुद्धिमानी। यद्यपि समस्याओं के समाधान के लिए दीनदयाल ने स्वदेशी ज्ञान और विवेक को प्राथमिकता दी, साथ ही उन्होंने कहा कि हम विशेष परिस्थितियों में दूसरों के ज्ञान को अपना सकते हैं। वह आगे बताते हैं कि ''जहां तक शाश्वत सिद्धांतों और सत्य का संबंध है, हमें संपूर्ण मानवता के ज्ञान और लाभ को आत्मसात करना चाहिए''। जो हमारे समाज में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें बदले हुए समय के अनुसार अनुकूलित करना होगा और जो हमें अन्य समाजों से प्राप्त होते हैं उन्हें हमारी परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित करना होगा। उनके

लिए, भारतीय संस्कृति की मदद से हम पश्चिमी राजनीतिक विचारों के विभिन्न आदर्शों में सामंजस्य बिठा सकते हैं, जो हमारे लिए एक अतिरिक्त लाभ होगा।

इसके अलावा, दीनदयाल ने कहा कि मानव स्वभाव में दो प्रकार की प्रवृत्ति होती है, एक ओर क्रोध और लालच और दूसरी ओर प्रेम और त्याग। ये सभी प्रवृत्तियाँ मानव स्वभाव में विद्यमान हैं। क्रोध, लोभ, आदि मनुष्य और पशुओं में समान रूप से स्वाभाविक हैं। अतः यदि मनुष्य क्रोध को अपने जीवन का आधार बना ले और उसी के अनुसार अपने प्रयत्नों की व्यवस्था कर ले तो परिणामतः उसके जीवन में सामंजस्य की कमी होगी। इसलिए, ''क्रोध न करें'' का उपदेश दिया जाता है। यहां तक कि जब किसी के मन में क्रोध उत्पन्न होता है तब भी व्यक्ति उस पर नियंत्रण रख सकता है और उसे ऐसा करना भी चाहिए। इस प्रकार क्रोध नहीं बल्कि नियंत्रण हमारे जीवन का मानक बन जाता है। मानवीय संबंधों के कुछ सिद्धांत ऐसे हैं जो बनाये नहीं जाते बल्कि खोजे जाते हैं। ऐसे सिद्धांतों का पालन उनकी उपयोगिता से होता है। उदाहरण के तौर पर अगर किसी को गुस्सा आता है तो उसे उसे काबू में रखना चाहिए। या एक दूसरे से झूठ न बोलें। नैतिकता के ये सिद्धांत भारतीय समाज में धर्म या जीवन का नियम बनाते हैं। मानव जीवन में सद्भाव, शांति और प्रगति लाने वाले सिद्धांत इस धर्म शब्द में शामिल हैं। तब, धर्म के आधार पर, मनुष्य को समग्र रूप से जीवन का विश्लेषण करना चाहिए। जब प्रकृति को धर्म के सिद्धांतों के अनुसार संचालित किया जाता है, तो मनुष्य में संस्कृति और सभ्यता आती है। वास्तव में यही संस्कृति है जो मनुष्य को मानव जाति के जीवन को बनाए रखने और उन्नत करने में सक्षम बनाएगी। यहां धर्म का अनुवाद कानून के रूप में किया गया है। दीन दयाल उपाध्याय जी के लिए धर्म शब्द धर्म का सही अनुवाद नहीं है। इस प्रकार, एकीकृत जीवन न केवल भारतीय संस्कृ ति का आधार और अंतर्निहित सिद्धांत है, बल्कि इसके लक्ष्य और आदर्श भी हैं।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का सम्पूर्ण जीवन सामाजिक समरसता का महत्वपूर्ण उदाहरण है। उन्होंने अपना जीवन जनता की वास्तविक समस्याओं का समाधान करने में व्यतीत किया तथा वें भारतीय समाज की प्रवृत्तियों से भली–भाँति परिचित थे। इस कारण वह भारत के विकास के लिए भारतीय संस्कृति से जुड़ा समग्रतावादी दर्शन जिसे एकात्म मानववाद नाम दिया, अधिक उपयोगी मानते थे।

जब पूरा विश्व साम्यवाद तथा पूंजीवाद की अच्छाई तथा बुराई में उलझा हुआ था, तब उस समय पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन दोनों विचारधाराओं को नकारते हुए एकात्मक मानववाद की अवधारणा प्रस्तुत की। एकात्मक मानववाद भारतीय संस्कृ ति, विचार तथा दर्शन से उत्पन्न एक दर्शन है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने कभी भी यह दावा नहीं किया कि उन्होंने दुनिया के सामने कोई नया दर्शन या विचारधारा प्रस्तुत की है। उनका कहना था कि एकात्म मानववाद के माध्यम से वह भारत की पुरातन संस्कृति की ही पुनर्स्थापना कर रहे हैं। उनका मानना था कि समाज का आधार संघर्ष में ही सहयोग है। आजादी के बाद की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मानव कल्याण के लिए पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की अवधारणा से समाज को परिचित कराया। इस दर्शन के द्वारा पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने आम आदमी की गरिमा को महत्व प्रदान करने का प्रयास किया। सन 1964 में, ग्वालियर में भारतीय जनसंघ का अधिवेशन हुआ, जिसमें उन्होनें एकात्मक मानववाद के विचार को सबके समक्ष प्रस्तुत किया। इसके अगले वर्ष 1965 ई0 में इस विचार, दर्शन, को स्वीकार कर लिया गया। इसी वर्ष पूना में 22 से 25 अप्रैल में जनसंघ का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने विस्तार से एकात्म मानववाद पर चर्चा कर सबको अवगत कराया। इससे पूर्व पूँजीवाद ने मानव को एक आर्थिक इकाई के रूप में माना एवं उपयोग किया। दूसरी महत्वपूर्ण विचारधारा, साम्यवाद थी जो व्यक्ति को एक राजनैतिक एवं कार्मिक इकाई मानती थी। इन विचारधाराओं मे मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता है। व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व की जगह उसे एक पक्ष पर ही कार्य सम्पन्न किया जाता है। इस समस्या का समाधान पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी द्वारा प्रस्तुत एकात्म मानववाद दर्शन में है। व्यक्ति के सभी पहलुओं आवश्यकताओं पर विचार एकात्म मानव दर्शन में किया गया है। एकात्म समाज से राष्ट्र और उसके बाद मानवता को अपनाया गया है। एकात्म मानववाद सभी इकाईयों में समाहित परस्पर पूरक सम्बन्धों पर जोर देता है।

एकात्म मानववाद के अनुसार व्यक्ति केवल शरीर नहीं है, बल्कि शरीर के साथ मन, बुद्धि आत्मा का मिलन है। इसलिए मानव को समग्र रूप में देखना चाहिए। यह व्यक्तित्व की समग्रता मनुष्य को समाज के लिए अधिक उपयोगी बनाती है। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी का यह मानना था कि मानव देह हमारे धर्म, जीवन और मोक्ष की अवधारणा का विचार एकात्मक मानववाद में समाहित है। मनुष्य के मनुष्यत्व और उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले इन चार मूल तत्वों में एकात्मता आवश्यक है। यही एकात्मता मानव के कर्मों को प्रेरित कर उसे उद्यमी बना सकती है। जिससे समाज का कल्याण होगा।

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को सुख, शिक्षा व संस्कार मिले यह प्रत्येक सरकार, शासन और प्रशासन की नीति होनी चाहिए। समाज तथा सरकार दोनों परस्पर सहयोग के साथ राष्ट्र के अभ्युदय तथा परम् वैभव के लिए कार्य करें यह एकात्म मानववाद दर्शन की मूल विचार स्रोत है।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने आगे कहा कि अर्थ का अभाव और प्रभाव दोनों ही विनाश का कारण बनते हैं। किसी समाज या व्यक्ति में यदि साधन की बजाय अर्थ लक्ष्य बन जाता है तो सारी शक्तियाँ अर्थ से ही प्राप्त होती हैं। अतः अर्थ के प्रभाव में अर्थ संचय के लिए विभिन्न पाप किये जाते हैं। जिस व्यक्ति के पास अतिरिक्त धन होता है उसके सुखी रहने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। अर्थ का प्रभाव तब प्रबल होता है जब कोई व्यक्ति अर्थ का उचित उपयोग नहीं समझता है। अर्थ का प्रभाव वहां भी होता है जहां गौण अर्थ अर्थात मुद्रा और उपभोक्ता सामग्री में प्रयुक्त होने वाली उत्पादक वस्तुओं की अधिकता होती है। इस प्रकार के अर्थ के प्रभाव से दूर रहना चाहिए। अर्थ के प्रभाव से बचने के लिए चरित्र निर्माण, आदर्शवाद का प्रसार, शिक्षा तथा उपयुक्त आर्थिक संरचना भी आवश्यक है। उनके लिए अर्थ एक व्यापक शब्द है जिसमें जीवन के राजनीतिक पहलू भी शामिल हैं। दंड–नीति (जीवन का राजनीतिक पहलू) बताती है कि राज्य की बहुत अधिक शक्ति धर्म के लिए खतरनाक है। राज्य की शक्ति की बुराई तब प्रबल होती है जब वह धर्म के उचित उचित स्थान को हड़प लेती है। इसलिए, एक क्रूर राज्य में, जो सभी शक्तियां (राजनीतिक और आर्थिक दोनों) प्राप्त कर लेता है, धर्म का पतन हो जाता है। इस परिदृश्य में, समाज हर चीज के लिए राज्य की ओर देखता है। परिणामस्वरूप, राज्य को धर्म और समाज पर कब्जा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। काम को भी दीनदयाल ने अर्थ और धर्म के समान ही माना है। उन्होंने कहा कि धर्म की वृद्धि के लिए हमें न तो भौतिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करनी चाहिए और न ही इच्छाओं को पूरी तरह दबाना चाहिए। यदि लोगों के पास खाने के लिए भोजन नहीं है तो धर्म का पालन नहीं किया जा सकता। यदि मन को तृप्त करने वाली ललित कलाएँ पूरी तरह बंद कर दी जाएँ तो लोगों पर सभ्यता का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। मन विकारी हो जाएगा और धर्म की उपेक्षा होगी। इसलिए, काम को भी धर्म के अनुरूप रहना चाहिए।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी यह मानते थे कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में शासन तथा समाज संचालन के लिए भारतीय दर्शन ही उपयुक्त होगा। भारतीय समाज के साथ अर्थव्यवस्था के प्रति भी समग्रता का दृष्टिकोण बनाया। समाज का अन्तिम व्यक्ति भी सुखी तथा सम्पन्न होना चाहिए। भारतीय आर्थिक नीति नियमन के बारे में वह लिखते हैं कि शासन का उद्देश्य अन्त्योदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए। उनका मानना था कि शासन को व्यापार नहीं करना चाहिए और व्यापारी के हाथ में शासन नहीं होना चाहिए। आजादी के बाद से ही उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के साथ–साथ लघु उद्योगों को बढ़ावा देना चाहिए। वर्तमान सरकार 'सबका साथ–सबका विकास' की नीति को मानकर कार्य कर रही है, यह पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी के आर्थिक दर्शन अन्त्योदय पर ही आधारित है।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने राजनैतिक व्यवस्था पर अपने विचार प्रकट करते हुए एक नये शब्द का निर्माण किया जो है– 'लोकमत परिस्कार'। इसका अर्थ है कि जनता में एक प्रकार की जागरूकता उत्पन्न हो जो कि समाज को बांटने वाले विचारों जैसे – जाति, क्षेत्र, भाषावाद, आदि से दुष्प्रभावित न हो बल्कि निरपेक्ष भाव से अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का पालन करें। अच्छा लोकमत होगा, तो अच्छी राजनीति होगी, तभी अच्छी व उपयुक्त सरकार गठित होगी जो एकात्म दर्शन के अनुसार जनता का सर्वांगीण विकास करेगी। जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति होगी तो देश का भी सर्वांगीण विकास होगा।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय हमेशा विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के पक्षधर रहे थे। वह सामाजिक क्षेत्रों के अधिकारों के राष्ट्रीयकरण के खिलाफ थे। उनका मानना था कि मेहनतकश लोगों को अपनी बुनियादी तथा आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राज्य पर आश्रित न रहना पड़े। एकात्म मानववाद के प्रेरणा पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी शिक्षा के सरकारीकरण के समर्थक नहीं थे। उनका मानना था कि शिक्षा देने का कार्य सरकार के हाथों में नहीं होना चाहिए। शिक्षा से सम्बन्धित कार्य को समाज पर छोड़ देना चाहिए। पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी का मानना था कि समाज या निजी क्षेत्र जोखिम नहीं लेते। वर्तमान समय में हमारे यशस्वी प्रधानमंत्री जी श्री नरेन्द्र दामोदरदास मोदी जी ने पंडित दीन दयाल उपाध्याय के इस विचार का अनुकरण करते हुए minimum government and maximum governance का नारा देते हैं। पंडित जी के अनुसार आर्थिक व राजनीतिक ताकत, एक स्थान पर एकत्रित होने से लोकतंत्र खतरे में आ जाता है। इस कारण शक्ति का विकेन्द्रीकरण अवश्य होना चाहिए।

वास्तव में पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी का 'एकात्म मानववाद' महज एक वैचारिक दर्शन नहीं था बल्कि इसमें राजनीति समाजनीति, अर्थनीति तथा उद्योग के साथ शिक्षा व लोकनीति पर व्यवहारिक नीति निर्देश भी शामिल हैं। उनके विचार सर्वकालिक, शाश्वत और प्रासंगिक हैं। पंडित जी का एकात्म मानव दर्शन भारतीयता की संस्कृति पर आधारित है, इसलिए वह सम्पूर्ण सृष्टि को एक सकारात्मक, समन्वयपूर्ण दिशा में संकलित करती है। भारतीय राजनीति में पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी एक ऋषि रूप में मनीषी थे। वह भारतीय जनसंघ में शामिल रहते हुए भी दलगत राजनीतिक संकीर्णताओं से ऊपर थे। वर्तमान में हम उनके सभी विचारों का अनुकरण कर भारत राष्ट्र को विश्वगुरू तथा सर्वशक्तिशाली बना सकते हैं।

संदर्भ सूची–

- ब्यूरो रिपोर्ट राज्यसभा टी.वी.
- भारतीय अर्थ–नीति, विकास की एक दिशा–पंडित दीनदयाल उपाध्याय, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2014, प्र0सं0–10–11।
- पंडित दीन दयाल उपाध्याय–विचार दर्शन, एकात्म मानव दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, केशव कुन्ज, झण्डेलाल, नई दिल्ली–110055, प्र0सं0–94।
- पंडित दीन दयाल उपाध्याय–विचार दर्शन, एकात्म मानव दर्शन, 2014 सुरूचि प्रकाशन।
- पान्चजन्म, 30 मार्च, 1959य 'विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था से ही मानव मूल्यों की रक्षा,' दीनदयाल उपाध्याय, महामंत्री जनसंघ।
- शर्मा डा. महेशचन्द्र, 2017, 'पं० दीनदयाल उपाध्यायः कर्तव्य एवं विचार प्रभात पेपर बैक्स, नई दिल्ली।
- ठेंगड़ी दत्तोपन्त, 1970, ''एकात्म मानववादः एक अध्ययन,'' भारतीय संस्कृति पुनुरुत्थान समिति, उ0 प्र0।
- देवधर विश्वनाथ नारायण 2014, ''पंडित दीनदयाल उपाध्यायः विचार दर्शन, खण्ड–7 (व्यक्ति दर्शन) सुरूचि प्रकाशन, केशवकुन्ज, झण्डेवालान, नई दिल्ली।
- दीनदयाल उपाध्याय, 1958, ''भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशा,'' राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ।
- दीनदयाल उपाध्याय, 1960, ''राष्ट्र जीवन की समस्याऐं, राष्ट्रधर्म प्रकाशन, लखनऊ।